मध्यकालीन संस्कृति
(Culture during Medieval Period)

मध्यकाल में सांस्कृतिक विविधता का एक नया रूप प्रकट हुआ तथा इसे गांगी-यमुनी तहज़ीब के नाम से जाना जाता है। यह तहज़ीब हिंदू एवं इस्लामी संस्कृति के बीच पारस्परिक आदान-प्रदान का परिणाम थी। मध्यकाल में निम्नलिखित कारकों ने सांस्कृतिक विविधता को बल प्रदान किया-

1. उत्तर-पश्चिम से जनसंख्या का आप्रवर्जन (Migration)- इस काल में मध्य एशिया एवं पश्चिम एशिया से नवीन सामाजिक समूहों का आगमन हुआ। ये सामाजिक समूह थे- तुर्क, मंगोल एवं मुगल। इस जनसंख्या के आप्रवर्जन के लिए बाह्य एवं आंतरिक दोनों कारक उत्तरदायी थे। बाह्य कारक था- मध्य एशिया तथा पश्चिम एशिया की राजनीति में उतार-चढ़ाव। आरंभ में तुर्क मध्य एशिया की एक जनजाति थे। इनमें अनेक तुर्कों ने इस्लाम धर्म कबूल कर इस्लाम के अंतर्गत सेवा ग्रहण की। फिर ये एक राजनीतिक शक्ति के रूप में ढल गए और फिर उन्होंने भारत की ओर प्रसार आरंभ किया। गजनी एवं गोरी के आक्रमण को इसी संदर्भ में समझने की जरूरत है। आगे अफगानों एवं मुगलों का आगमन भी इसी क्रम में हुआ।

उसी प्रकार, इसके लिए एक आंतरिक कारक भी उत्तरदायी था- वह था हिंदुस्तान का आकर्षण। हिंदुस्तान एक संपन्न देश था। फिर सुल्तानों एवं मुगलों के अधीन प्रतिभाशाली व्यक्तित्वों को सेवा के बेहतर अवसर प्राप्त हुए। इसलिए भी भारत की ओर आकर्षण बढ़ा। तुर्कों के अधीन हिंदुस्तान की ओर आकर्षण का एक महत्वपूर्ण कारण था मंगोल आक्रमण। इसके कारण मध्य एशिया तथा पश्चिम एशिया से अनेक प्रतिभाशाली व्यक्तित्व हिंदुस्तान की ओर पलायन कर गए। अमीर खुसरो भी उनमें से एक थे। फिर इस काल में सूफी संत, विद्वान, कलाकार, कारीगर आदि तत्वों का आगमन हुआ और इन तत्वों ने हिंदुस्तानी संस्कृति के विकास में अपना योगदान दिया। इसके अतिरिक्त बड़ी संख्या में तुर्क, ताज़िक (पश्चिम एशिया) तथा अफगानों ने राज्य के अंतर्गत सेवा ग्रहण की। आगे मुगलों के अधीन दिल्ली एवं आगरा इस्लामी विश्व में महत्वपूर्ण आकर्षण के केंद्र बने रहे। बड़ी संख्या में विद्वान, कलाकार एवं उद्यमियों ने दिल्ली एवं आगरा की ओर रुख किया। मुगल अमीर वर्ग में खोरासानी तत्वों के साथ-साथ एक बड़ी संख्या ईरानियों की बनी रही थी।

नवीन तत्व केवल उत्तर भारत तक सीमित नहीं रहे थे। जैसाकि हम जानते हैं कि सिंध में अरब शक्ति की स्थापना से पूर्व ही दक्षिण पश्चिम के मालाबार तट पर अरब व्यापारी बस गए थे। फिर उत्तर भारत में तुर्की शासन की स्थापना के पश्चात् 14वीं सदी तक तुर्की राज्य ने साम्राज्यवाद का रूप ले लिया। इसका परिणाम हुआ दक्षिण की ओर रूख। पहले अलाउद्दीन खिलजी ने दक्षिण का अभियान किया, फिर मुहम्मद-बिन-तुगलक के अंतर्गत सदूर दक्षिण तक तुर्की साम्राज्य का विस्तार हुआ। साथ ही, मुहम्मद-बिन-तुगलक ने दक्षिण भारत के क्षेत्र पर बेहतर रूप में नियंत्रण बनाए रखने के लिए अपनी राजधानी देवगिरी में स्थानांतरित की। इस कारण उत्तर से मुस्लिम कुलीन वर्ग का एक समूह दक्षिण गया। साथ ही वहाँ इस्लामी संस्कृति का भी प्रसार हुआ। आगे मुगलों के अधीन भी दक्षिण की ओर प्रसार होता रहा। शाहजहाँ ने अहमदनगर को जीतकर मुगल साम्राज्य मे मिला लिया। वहीं औरंगजेब ने बीजापुर एवं गोलकुंडा को जीतकर कृष्णा नदी से दक्षिण साम्राज्य विस्तार की नीति जारी रखी। अतः स्वाभाविक रूप में उत्तर से दक्षिण की ओर नवीन तत्वों का आगमन होता रहा। इसके कारण मुस्लिम जनसंख्या उत्तर भारत में कश्मीर, पंजाब, गुजरात से लेकर पूरब में बंगाल तक फैल गई। फिर सुदूर दक्षिण तक उनका प्रसार हो गया। विजेता शासकों के साथ-साथ सूफी संत भी दक्षिण गए तथा वहाँ लोगों को इस्लाम के मानवीय चेहरे से अवगत कराना चाहा। बंदा नवाज गेसूदराज एक ऐसे ही सूफी संत थे जिन्होंने हैदराबाद में अपनी खानकाह को स्थापित किया।

2. इस्लाम एवं हिंदू धर्म का विशिष्ट स्वरूप तथा उनके बीच पारस्परिक आदान-प्रदान- हिंदू धर्म एक सर्वग्रासी धर्म था। हिंदुस्तान में जो विरोधी मत-मतान्तर एवं धार्मिक पंथ उत्पन्न हुए थे, वे सभी इसमें समाहित हो गए। उसी प्रकार, इस्लाम भी एक सर्वग्रासी पंथ था, वह भी जिस क्षेत्र में गया उसने वहाँ के धर्म को मिटाकर इस्लाम का प्रसार किया। इसलिए मुस्लिम किसी भी क्षेत्र में अल्पसंख्यक बनकर गए, परंतु शीघ्र ही बहुसंख्यक बन गए। परंतु भारत में हिंदू धर्म इस्लाम को निगल नहीं सका क्योंकि इस्लाम एक मजहबी धर्म था। इसमें धर्म पहले था तथा समाज बाद में। उसी तरह इस्लाम भी हिंदू धर्म को विस्थापित नहीं कर सका क्योंकि यह एक अति प्राचीन धार्मिक पंथ तथा इसकी जड़ें बहुत गहरी थीं। यह एक प्रमुख कारण है कि भारत में मुस्लिम अल्पसंख्यक बनकर आए तथा अल्पसंख्यक बनकर रह गए।

किंतु सैकड़ों वर्षों तक साथ रहते हुए हिंदू धर्म एवं इस्लाम ने एक समन्वित संस्कृति का विकास किया तथा यह संस्कृति विभिन्न क्षेत्रों में व्यक्त होती है। लगभग पाँच सौ वर्षों की सल्तनतकालीन एवं मुगलकालीन शासन व्यवस्था के अंतर्गत खान-पान, रहन-सहन, धर्म, कला, भाषा-साहित्य सभी क्षेत्रों में यह समन्वित संस्कृति व्यक्त हुई। इसे गांगी-यमुनी तहज़ीब के नाम से जाना गया।

धर्म के क्षेत्र में यह भक्ति एवं सूफी आंदोलन के रूप में अभिव्यक्त हुई। कहा जाता है कि हिंदू एवं मुस्लिम रहस्यवादी चिंतकों के विचार इतने सामान्य थे कि दोनों ने भावात्मक एकता के लिए काम किया। कबीर एवं नानक जैसे निर्गुण संत एवं निजामुद्दीन औलिया जैसे सूफी संतों, दोनों ने हिंदुस्तान की समन्वित संस्कृति में योगदान दिया। दोनों प्रकार के संतों के द्वारा निराकार ईश्वर के प्रति अगाध प्रेम एवं समर्पण का भाव व्यक्त किया गया। कबीर को हिंदू अथवा मुस्लिम परंपरा से जोड़ना मुश्किल है। उसी प्रकार, सूफी संतों ने अपनी-अपनी रचना में हिंदुओं के घरों की कहानी हिंदुओं की भाषा में सुनाई है अर्थात् सूफी संतों ने अधिकांशतः अवधी एवं पंजाबी भाषा का प्रयोग किया।

उसी तरह कला के क्षेत्र में स्थापत्य कला, चित्रकला एवं संगीत कला इन तीनों क्षेत्रों में हिंदू एवं इस्लाम इन दोनों तत्वों का अवदान देखने को मिलता है। मुस्लिम शासन की स्थापना से पूर्व भारत में स्थापत्य की एक समृद्ध परंपरा रही थी, जिसे लोकप्रिय रूप में शहतीरी शैली के नाम से जाना जाता था। दूसरी तरफ इस्लाम के आगमन के पश्चात् मेहराबी शैली के आधार पर निर्माण कार्य आरंभ हुआ। मेहराबी शैली के अंतर्गत मेहराब एवं गुंबद का प्रयोग होता था। यह शैली इस्लाम ने बिजेन्टीयन साम्राज्य या फिर रोमन साम्राज्य से ली है। परंतु प्रचलित शहतीरी शैली का इतना गहरा प्रभाव था कि उसके प्रभाव से बचना संभव नहीं था। अतः मुगल काल तक होने वाले निर्माण कार्य में दोनों के बीच कहीं बेहतर संबंध देखने को मिलता है।

उसी प्रकार, यद्यपि सल्तनत काल में चित्रकला का स्पष्ट स्वरूप उभरकर नहीं आया, परंतु महान मुगलों के अधीन ईरानी शैली एवं भारतीय शैली के बीच बेहतर समन्वय हुआ। मुगल पांडुलिपि चित्रकारी (Miniature Painting) पर चौरपंचशिका शैली, जिसे 'पोथी शैली' के नाम से जाना जाता है, उसका गहरा प्रभाव है। संगीत कला के क्षेत्र में भी ईरानी शैली तथा भारतीय शैली के समन्वय से हिंदुस्तानी शैली का विकास हुआ। हिंदुस्तानी शैली के अंतर्गत ध्रुपद, ख्याल, गज़ल, टप्पा एवं ठुमरी कई प्रकार की गायकी विकसित हुई। महान मुगलों के अधीन ध्रुपद गायकी की काफी प्रगति हुई। वही समय है कि कत्थक नृत्य को भी मुगलों का संरक्षण प्राप्त हुआ, जबकि कत्थक नृत्य का विकास मंदिरों में हुआ था।

भाषा-साहित्य के क्षेत्र में हिंदू एवं मुस्लिमों के समन्वित योगदान को भुलाया नहीं जा सकता। सल्तनत एवं मुगल काल की राजकीय भाषा फारसी थी। इसके महत्व को देखते हुए अनेक हिंदुओं ने फारसी भाषा सीखी तथा फारसी साहित्य का संवर्द्धन किया। उदाहरण के लिए, मुगलों के अधीन ईश्वरदास नागर एवं भीमसेन बुरहानपुरी। फिर हिंदू एवं मुस्लिम की समान भाषा के रूप में उर्दू का विकास हुआ। उर्दू को 'जुबान-ए-दिल्ली' के नाम से जाना जाता है। विभाजन के पश्चात् पाकिस्तान की राजभाषा उर्दू बनी, न कि फारसी। फिर मुस्लिम शासकों के द्वारा भारतीय भाषाओं को संरक्षण दिया गया। मुगल दरबार में संस्कृत एवं हिंदी भाषा-साहित्य को संरक्षण मिला। यह सुखद आश्चर्य है कि ब्रजभाषा में मधुर कविता रचने वाले रसखान मुस्लिम हैं।

3. इस्लाम का क्षेत्रीय तत्वों के साथ सामंजस्य- जब भी केंद्रीय स्तर पर मुस्लिम साम्राज्य का पतन हुआ, तो क्षेत्रीय स्तर पर मुस्लिम अधिकारियों के द्वारा स्वतंत्र सत्ता कायम की गई। यही वो समय है जब इस्लामी पद्धति का क्षेत्रीय संस्कृति के साथ सामंजस्य हुआ। कला की क्षेत्रीय शैलियाँ विकसित हुईं। मुस्लिम शासकों ने क्षेत्रीय भाषा-साहित्य को संरक्षण दिया। फिर मुस्लिम समूह क्षेत्रीय खान-पान एवं रहन-सहन से प्रभावित हुए। इस तरह मुस्लिम शासकों का शासन, गुजरात, बंगाल, जौनपुर, दक्कन आदि क्षेत्रों में कायम हुआ। अतः इस्लाम का केवल भारतीयकरण ही नहीं हुआ, बल्कि क्षेत्रीयकरण भी हो गया। पंजाब और बंगाल के मुसलमानों की जीवन पद्धति में काफी अंतर आ गया। इसलिए भी आगे धर्म के नाम पर पाकिस्तानी हुक्मरानों को पाकिस्तान राष्ट्र के साथ सभी भारतीय मुसलमानों को जोड़कर रख पाना संभव नहीं हुआ।

4. 18वीं सदी का भारत संस्कृतियों का सतरंगी मेल- 18वीं सदी में ब्रिटिश शासन की पूर्व संध्या पर जिस हिंदुस्तानी संस्कृति का चित्र उभरता है, वह बहुसांस्कृतिक था। हिन्दू एवं मुसलमानों के खान-पान, रहन-सहन, जीवन पद्धति सभी एक दूसरे से बहुत हद तक प्रभावित थे। हिंदवी एक लोकप्रिय भाषा थी तथा खड़ी बोली एवं उर्दू इसके रूप थे।

एक तरफ मुगल साम्राज्य का विघटन हो रहा था, परंतु दूसरी तरफ मुगल संस्कृति क्षेत्रीय स्तर पर फैल रही थी। क्षेत्रीय राज्यों के द्वारा मुगल संस्कृति को संरक्षण दिया जा रहा था। मुगल संस्कृति का इतना गहरा प्रभाव था कि 18वीं सदी में स्वयं ब्रिटिश भी इसके प्रभाव से नहीं बच सके थे। इस तथ्य को विलियम डेलरिम्पल नामक ब्रिटिश लेखक ने 'White Mughal' नामक कृति में व्यक्त किया है।

वस्तुतः हिंदू धर्म एवं सूफी पंथ के कारण दक्षिण एशिया का इस्लाम (वर्तमान में भारत, पाकिस्तान एवं बांग्लादेश) शेष इस्लामिक दुनिया से पृथक हो चुका था।

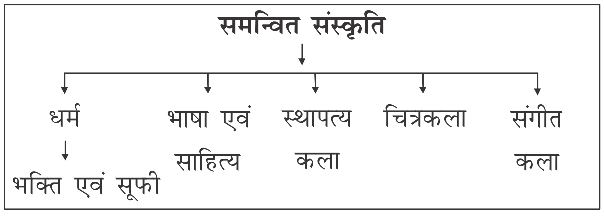

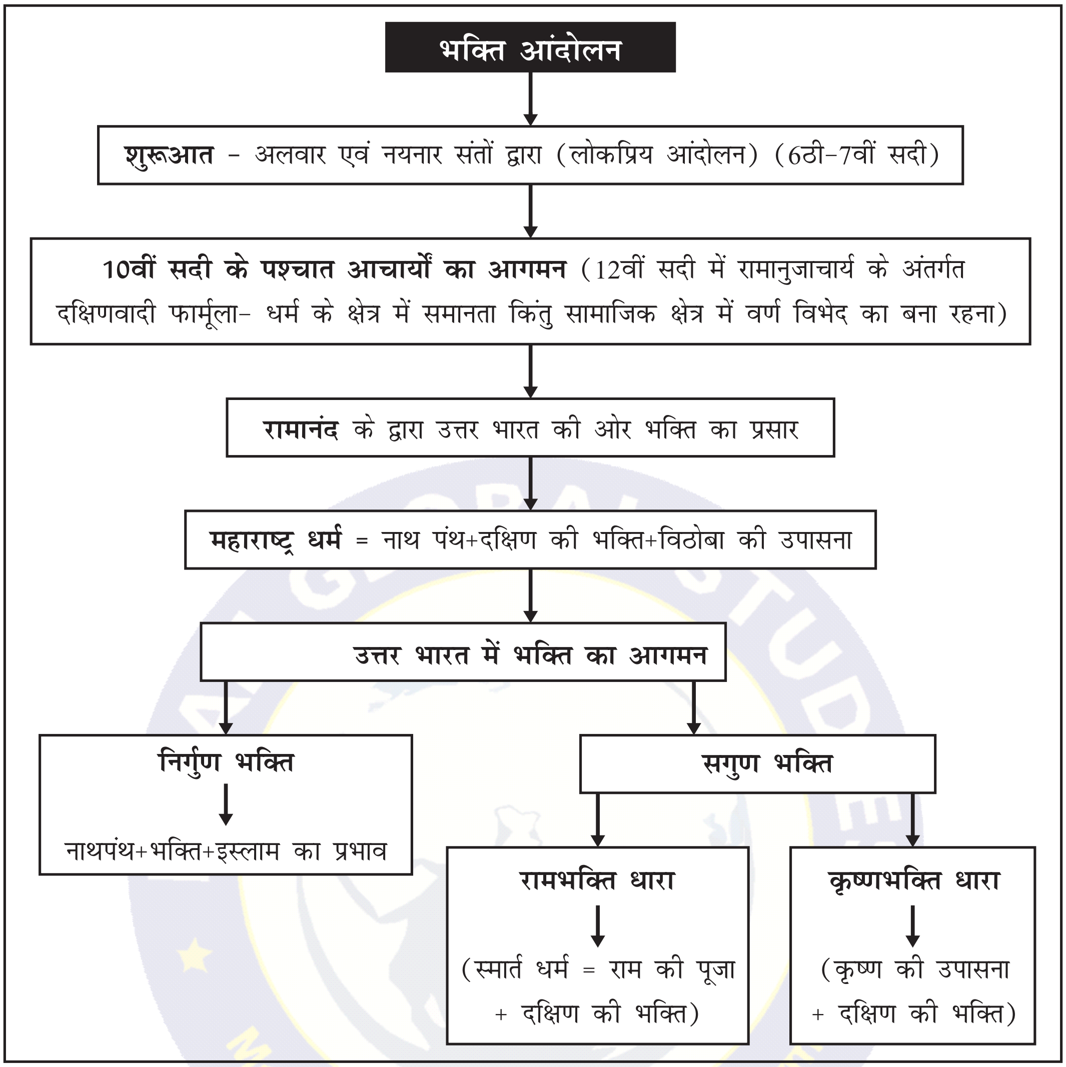

दक्षिण भारत में भक्ति आंदोलन का मॉडल विकसित हुआ। अलवार और नयनार संतों के अधीन उसका आरंभिक रूप प्रकट हुआ और फिर आचार्यों ने उसे स्थायित्व प्रदान किया। फिर दक्षिण से उत्तर की ओर भक्ति का आगमन होने लगा। वहीं महाराष्ट्र में इसका एक नया रूप प्रकट हुआ, जिसे 'महाराष्ट्र धर्म' के नाम से जाना गया।

■ **महाराष्ट्र धर्म के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए राज्य निर्माण में उसकी भूमिका को दर्शाइए।**

महाराष्ट्र धर्म अपने स्वरूप में विशिष्ट रहा था। यह एक क्षेत्रीय देवता 'विठोबा' की उपासना पर केन्द्रित था तथा इसका केन्द्र पण्ढरपुर रहा था। इससे जुड़े हुए महत्वपूर्ण संत ज्ञानदेव, नामदेव, एकनाथ, तुकाराम, रामदास समर्थ आदि थे। इन पर वैष्णव पंथ के प्रभाव के साथ-साथ नाथ पंथ का भी प्रभाव था। इसलिए महाराष्ट्र धर्म ने जाति विभाजन को अस्वीकार कर उस क्षेत्र के लोगों को एकसमान मराठी पहचान दी।

महाराष्ट्र संतों ने जनसामान्य की भाषा मराठी को एक नई पहचान दी और मराठी भाषा में अपने भक्ति भाव को 'अभंगों' के रूप में व्यक्त किया।

महाराष्ट्र धर्म जनसामान्य का धर्म था और इसमें ऊँच एवं नीच में कोई भेदभाव नहीं था। इसका लाभ शिवाजी जैसे प्रगतिशील नेता ने उठाया और निम्न जाति के लोगों को अपनी सेना में संगठित किया।

सामान्यत: हिन्दू धर्म को सहिष्णु माना जाता है, परन्तु महाराष्ट्र धर्म जयिष्णु (विजय की कामना) सिद्ध हुआ। आगे जब मराठा शक्ति की टकराहट मुगलों के साथ हुई, तो फिर उपर्युक्त कारणों से महाराष्ट्र धर्म ने मराठा राज्य की स्थापना में अपनी भूमिका निभा दी।

■ **दक्षिण से उत्तर की ओर भक्ति के आगमन ने इसके स्वरूप में किस प्रकार का परिवर्तन लाया?**

दक्षिण में जो भक्ति का प्रारूप निर्मित हुआ था, उसकी दो प्रमुख विशेषताएँ थीं, प्रथम- ईश्वर को आकार रूप में पूजा गया। उदाहरण के लिए, विष्णु और शिव, दूसरा- आचार्यों के आगमन के बाद भक्ति आंदोलन ने वर्ण और जाति विभाजन के साथ समझौता कर लिया था।

उत्तर में आकर भक्ति आंदोलन दो धाराओं में बंट गया– सगुण भक्ति धारा और निर्गुण भक्ति धारा। सगुण भक्ति धारा को दक्षिण की भक्ति से बहुत हद तक समानता थी क्योंकि इसने भी ईश्वर को आकार रूप में पूजा और वर्ण एवं जाति विभाजन के साथ समझौता किया। अन्तर केवल उपास्य देव में बना रहा, उत्तर में विष्णु एवं शिव की जगह उपासना के केन्द्र में राम एवं कृष्ण स्थापित हुए।

परन्तु उत्तर में निर्गुण भक्तिधारा, एक पृथक तथा विलक्षण धारा के रूप में प्रकट हुई क्योंकि इसने दक्षिण की भक्ति से पृथक अपनी पहचान बनाई। प्रथम, इसने उपासना के केन्द्र में निराकार ईश्वर को रखा और उनके प्रति प्रेम की अभिव्यंजना की। इसलिए निर्गुण भक्ति में रहस्यवाद का तत्व भी आ जाता है। दूसरे, नाथ पंथ के प्रभाव में इसने जाति विभाजन को अस्वीकार कर दिया। उपर्युक्त कारणों से निर्गुण भक्ति का अपना पृथक स्थान है। इसके विकास में नाथ पंथ, भक्ति, इस्लाम के एकेश्वरवाद और सूफी पंथ सभी का योगदान माना जा सकता है।

■ **विशेषकर कबीर और नानक के संदर्भ में निर्गुण भक्ति के योगदान पर प्रकाश डालिए।**

निर्गुण भक्ति एक धार्मिक आंदोलन था तथा कबीर एवं नानक मूलतः संत थे, परन्तु इन्होंने समकालीन समाज, धर्म एवं संस्कृति सभी पर गहरा प्रभाव छोड़ा।

1. **धर्म सुधारक :** निर्गुण संत स्वाभाविक रूप में धर्मसुधारक बन गए क्योंकि उन्होंने निराकार ईश्वर की उपासना पर बल दिया। अतः मंदिर, मूर्तिपूजा, पुरोहितवाद आदि की अहमियत स्वयं समाप्त हो गई। कबीरदास शास्त्र की परम्परा से जुड़े नहीं थे, बल्कि उन्होंने अपने अनुभव को ही प्रमाण माना। दूसरी तरफ, गुरु नानक 'एक ही ओंकार' के महत्व पर बल देते हैं।

2. **समाज सुधारक:** कबीरदास ने जाति विभाजन को अस्वीकार कर दिया। उन्होंने हिन्दू-मुस्लिम एकता की भी बात उठाई। उनके विचार में अगर ईश्वर और अल्लाह एक हैं, तो उनके अनुयायी पृथक-पृथक कैसे हो गए अर्थात् हिन्दू और मुसलमानों में अन्तर क्यों? इस प्रकार, उन्होंने ईश्वरीय एकता के माध्यम से मानवीय एकता का रास्ता तैयार कर दिया। दूसरी तरफ, गुरू नानक ने प्रत्येक प्रकार की जाति पहचान को अस्वीकार करते हुए केवल एक ही पहचान को महत्व दिया, वह है शिष्य और यहीं से 'सिख' शब्द चल निकला।

3. निर्गुण भक्तों ने संन्यास जीवन पर नहीं, बल्कि गृहस्थ जीवन पर बल दिया। कबीर अथवा नानक जीवन पर्यन्त उत्पादन से जुड़े रहे। कबीर अपने दोहे में भी उत्पादन की ओर संकेत करते हैं। जैसे–

"झीनी-झीनी बीनी चदरिया।। काहे कै ताना काहे के भरनी, कौन तार से बीनी चदरिया।।"

उसी प्रकार सिख पंथ में 'कीरत-करनी' का अधिक महत्व है। इस प्रकार, निर्गुण भक्तों ने शिल्प उत्पादन को प्रोत्साहन दिया।

4. **सांस्कृतिक योगदान:** निर्गुण भक्ति का साहित्य एवं संगीत के क्षेत्र में भी महत्वपूर्ण योगदान माना जा सकता है। उदाहरण के लिए, कबीर दास ने संस्कृत के समानांतर 'हिंदवी भाषा' को महत्व दिया और दोहे, साखी एवं काव्य के अन्य रूपों का प्रयोग कर हिंदवी साहित्य को समृद्ध किया। सबसे बढ़कर, कबीर के दोहे, साखी आदि गेय हैं और ये उत्कृष्ट संगीत के उदाहरण हैं।

वहीं नानक की रचना ने पंजाबी भाषा में साहित्य को समृद्ध किया। नानक के द्वारा लिखे गए 'सबद' उत्कृष्ट प्रकार के संगीत के उदाहरण हैं।

■ **निर्गुण भक्ति की सीमाएँ**

1. कबीर एवं नानक जैसे संत मूलतः धार्मिक एवं आध्यात्मिक व्यक्तित्व थे, कोई समाज सुधारक नहीं। इसलिए सामाजिक कुरीतियों की आलोचना करने के बावजूद वे उसका कोई विकल्प नहीं दे सके।

2. कबीरदास को 15वीं सदी के 'मार्टिन लूथर' का नाम दिया गया है, परन्तु सच्चाई यह है कि प्रोटेस्टेंट आंदोलन की तरह कबीर और नानक की भक्ति, सामंतवाद के गढ़ को नहीं तोड़ सकी।

प्रश्न: उन कारणों की व्याख्या कीजिये, जिनकी वजह से सिख पंथ, सिख राज्य के रूप में स्थापित हो गया।

उत्तर: आरंभ से ही नानक की भक्ति अलग प्रकार की रही थी। इसका संदर्भ सामुदायिक रहा था। दूसरे शब्दों में, गुरुनानक के अनुयायी शिष्य अथवा सिख कहलाए। नानक अपने अनुयायियों के साथ संगत लगाते थे। सभी के द्वारा मिलकर भक्ति गीत भी गाया जाता था।

- नानक एवं उनके अनुयायियों के द्वारा सार्वजनिक भोजन अथवा लंगर व्यवस्था पर बल दिया गया। इससे बंधुता की भावना और भी मजबूत हुई।
- आगे जब शांतिपूर्ण सिख पंथ को मुगल शक्ति के द्वारा दबाने का प्रयास किया गया, तो फिर यह धार्मिक समुदाय सैन्य समूह में बदल गया। खालसा सिख एकता का प्रतीक बन गया और अंत में एक पृथक् राज्य निर्माण की प्रेरणा मिली।

सगुण भक्ति अथवा वैष्णववादी आंदोलन

उत्तर की सगुण भक्ति के केन्द्र में राम एवं कृष्ण जैसे देवता रहे हैं, जिन्हें विष्णु के अवतार के रूप में देखा जाता है। राम भक्ति धारा से जुड़े हुए संत तुलसीदास, नाभादास आदि रहे हैं, वहीं कृष्ण भक्ति धारा को कहीं अधिक विस्तार एवं लोकप्रियता

मिली। उदाहरण के लिए, उत्तर भारत में वल्लभाचार्य तथा 'अष्टछाप' के कवियों की चर्चा की जा सकती है। इनमें सूरदास भी रहे, जिन्होंने 'सूरसागर' की रचना की।

कृष्ण भक्ति धारा का प्रतिनिधित्व गुजरात में नरसी मेहता, राजस्थान में मीराबाई, बंगाल में चैतन्य महाप्रभु और असम में शंकरदेव करते थे। कृष्ण भक्ति को अधिक लोकप्रियता मिलने का कारण था इसमें साख्य भाव की भक्ति होना क्योंकि राम भक्ति दास्य भाव की भक्ति थी।

■ **सगुण भक्ति का योगदान**

1. सामाजिक क्षेत्र में अगर सगुण भक्ति ने जाति व्यवस्था को समाप्त नहीं किया अथवा उसे अस्वीकार नहीं किया, तो कम-से-कम उसकी कटुता अवश्य कम की। राम कथा में तुलसीदास ने शबरी, केवट, बन्दर एवं भालुओं के साथ राम की निकटता दिखाकर जाति व्यवस्था की कटुता को कम करने का प्रयास किया है, वहीं कृष्ण भक्ति में जाति मर्यादा के प्रति किसी प्रकार की गंभीरता नहीं दिखती।

2. **भाषा एवं साहित्य के विकास में सगुण भक्ति का अनुपम योगदान** रहा है। इसने उत्तर भारत के भाषा एवं साहित्य को अत्यधिक समृद्ध बनाया। इसे निम्नलिखित रूप में समझा जा सकता है-

(i) ब्रज भाषा :

हिन्दी प्रदेश की एक महत्वपूर्ण बोली ब्रज भाषा को एक साहित्यिक भाषा का दर्जा दिलाने का श्रेय भक्ति आंदोलन को है। सूरदास का 'सूरसागर' एक अद्वितीय साहित्यिक कृति है जिसमें वात्सल्य रस और श्रृंगार रस की प्रचुरता है।

(ii) अवधी :

हिन्दी प्रदेश की दूसरी बोली अवधी का महत्व इसलिए बढ़ गया क्योंकि यह राम की जन्मभूमि की भाषा थी। तुलसीदास की रचना 'रामचरित मानस' ने ठेठ अवधी को साहित्यिक अवधी का दर्जा दिलवाया। इसके कारण रामचरित मानस को अत्यधिक लोकप्रियता मिली। अगर आज राम कथा जीवित है, तो वाल्मीकि की वाणी में नहीं, बल्कि तुलसी की वाणी में। 'ग्रियर्सन' ने रामचरित मानस को प्रत्येक हिन्दू के घर की बाइबिल कहा है।

(iii) गुजराती भाषा :

कृष्ण भक्त नरसी मेहता ने गुजराती भाषा को समृद्ध किया। नरसी मेहता के भक्ति गीतों ने गाँधी जी को आकर्षित किया।

(iv) राजस्थानी :

राजस्थानी बोली को एक परिष्कृत भाषा साहित्य का रूप देने का श्रेय मीरा बाई को प्राप्त है। मीरा के भजन भारतीय साहित्य ही नहीं, बल्कि भारतीय संगीत की महान धरोहर हैं। गाँधी जी ने अपने अंतिम जन्मदिन के अवसर पर मीरा के भजन सुनने की इच्छा जतायी थी।

(v) बंगाली भाषा :

बंगाली भाषा के विकास में चंडीदास से लेकर चैतन्य महाप्रभु तक विभिन्न संतों का योगदान रहा है। चैतन्य की रचना ने या फिर चैतन्य के जीवन पर लिखे हुए विभिन्न विद्वानों की रचनाओं ने बंगाली भाषा-साहित्य को समृद्ध बनाया।

(vi) असमिया :

असमिया के विकास में शंकरदेव जैसे भक्ति संत का अहम योगदान रहा है। उन्होंने अपनी रचनाओं के माध्यम से असमिया भाषा को भी साहित्यिक भाषा के स्तर पर पहुँचाया।

3. कला में योगदान

(i) स्थापत्य कला -

सगुण भक्ति ने उत्तर भारत में स्थापत्य कला के विकास को अत्यधिक प्रोत्साहन दिया। आज भी नागर शैली में निर्मित उत्तर भारत के कुछ महत्वपूर्ण मंदिर भक्ति के प्रभाव में निर्मित किए गए और राम एवं कृष्ण से जुड़े हुए हैं।

(ii) मूर्ति कला -

सगुण भक्ति का बल मूर्ति पूजा पर रहा, इसलिए मूर्ति कला को इससे प्रोत्साहन मिला। सगुण भक्ति के प्रभाव में राम-सीता, राधा-कृष्ण की खुबसूरत मूर्तियाँ बनाई गईं और मंदिरों में स्थापित किया गया।

(iii) नृत्य कला -

उत्तर भारत का कथक नृत्य और असम का सत्रिया नृत्य का विकास वैष्णव भक्ति से जुड़ा हुआ है।

(iv) चित्र कला -

रामायण और महाभारत की कथा भारतीय चित्रकला के महत्वपूर्ण प्रतिपाद्य रहे हैं। विशेषकर राधा-कृष्ण की मूर्तियाँ राजपूत चित्रकला की 'किशनगढ़ शैली', मधुबनी चित्रकला, 'पहाड़ी शैली', सभी के लिए महत्वपूर्ण प्रेरणा रही है।

(v) संगीत कला-

सगुण भक्ति ने संगीत को विशेष प्रोत्साहन दिया। 'ध्रुपद गायकी' में 'स्वामी हरिदास' ने महत्वपूर्ण योगदान दिया। मीरा और नरसी मेहता के भजन उत्कृष्ट गायन के उदाहरण हैं। उसी प्रकार, चैतन्य महाप्रभु ने संकीर्तन प्रणाली की शुरूआत की।

■ **भक्ति आंदोलन में महिलाओं का योगदान-**

1. सगुण भक्ति में महिला संत समय-समय पर उभरती रहीं और उन्होंने भक्ति आंदोलन पर अपना प्रभाव डाला।

2. भक्ति साहित्य के आधार पर लगभग 80 महिला संतों के होने का अनुमान किया जाता है। सर्वप्रथम हमें एक आरंभिक अलवार संत अंडाल के विषय में सूचना प्राप्त होती है। उत्तर में कश्मीर में एक महिला संत लालदेद का विशेष प्रभाव रहा। वह ऋषि सूफी संप्रदाय के एक संत नुरूद्दीन के संपर्क में रही थीं। उसी प्रकार, कर्नाटक में वीरशैव संप्रदाय से जुड़ी हुई एक महिला संत महादेवी अक्का थीं, वह राजपरिवार की मर्यादा का

उल्लंघन करते हुए नग्न अवस्था में अपने बालों से शरीर को ढककर खुली सड़क पर निकल गईं। अंत में, मीराबाई की चर्चा के बिना महिला संतों का विवरण अधूरा रहेगा। सिसोदिया राजवंश की बहू होने के बावजूद भी मीरा ने राजकीय परिवार की मर्यादा का उल्लंघन करते हुए खुले रूप में कृष्ण को अपना पति स्वीकार किया। मीरा के भक्ति गीत भारतीय संगीत की अनुपम धरोहर बन चुके हैं।

योगदान – महिला संतों ने सामाजिक मर्यादा एवं पारिवारिक मर्यादा का उल्लंघन करते हुए पुरूष प्रधान सामंती समाज को चुनौती दी। मध्यकाल में उनका यह कदम एक सामाजिक विद्रोह की ओर संकेत करता है।

सीमाएं – पुरूष प्रधान सामंती समाज के विरूद्ध उनकी प्रतिक्रिया व्यक्तिगत खोज बनकर रह गई। उन्होनें खुले संघर्ष की जगह पलायन का रास्ता अपनाया तथा धर्म एवं आध्यात्म को अपना पनाहगार बनाया।

सूफी आंदोलन

सूफी शब्द 'सफा' से निकला है। सफा के कई अर्थ हैं; यथा– पवित्र अथवा ऊन से बने मोटे वस्त्र। सूफी धर्म इस्लाम के अन्तर्गत रहस्यवादी प्रवृत्ति के विकास को अभिव्यक्त करता है। सूफी चिन्तन के विकास में कई प्रकार के विचारों एवं चिन्तनों का योगदान रहा है। उदाहरण के लिए, महायान बौद्ध धर्म, जरथ्रुस्ट धर्म, नवप्लेटोवाद, ईसाई धर्म आदि। अद्वैतवादी चिन्तन से इसकी निकटता निर्गुण भक्ति में भी देखी जा सकती है। सूफी चिन्तन में जीव और ब्रह्म की एकता पर बल दिया गया है। यही वजह है कि रूढ़िवादी सुन्नी मुसलमानों के द्वारा आरम्भ में इसका विरोध हुआ, किन्तु मुस्लिम जगत में इसे प्रतिष्ठित करने का श्रेय अलगज्जाली को दिया जा सकता है। ईरान की भूमि पर सूफी चिन्तन का विकास हुआ। भारत की ओर सूफी चिन्तकों का आगमन सिन्ध विजय के साथ ही आरम्भ हो गया था। गजनी एवं गोरी के काल में बड़ी संख्या में सूफी संत भारत आये। 16वीं सदी में अबुल फजल भारत में 14 सूफी सिलसिलों का जिक्र करता है, इनमें चिश्ती एवं सुहरावर्दी प्रमुख थे।

सूफियों का सामाजिक-सांस्कृतिक योगदान

1. सूफी सन्तों ने ही इस्लाम का मानवीय रूप प्रस्तुत कर भारत में मुस्लिम शासन का सामाजिक आधार तैयार किया।
2. इसने हिन्दू समाज एवं मुस्लिम समाज के बीच वैचारिक सेतु का काम किया।
3. जहाँ कबीर ने आध्यात्मिक सत्ता की एकता का एहसास कराया, वहीं वास्तविक जीवन की एकता जायसी के द्वारा पूरी की गई। वस्तुतः सूफी संतों ने हिन्दुओं के घरों की कहानी हिन्दुओं की भाषाओं में कही। जायसी ने अपने लेखन में अवधी भाषा का प्रयोग किया, वहीं बुल्लेशाह एवं कुछ अन्य संतों ने पंजाबी भाषा का उपयोग किया।
4. सूफी संतों ने उर्दू भाषा-साहित्य के विकास में भी अपना योगदान दिया।
5. भारतीय संगीत परम्परा, विशेषकर हिन्दुस्तानी संगीत के विकास में सूफियों का बड़ा योगदान रहा है। सूफी शेख अपनी खानकाह में समा का आयोजन करते थे। सूफी खानकाहों में संगीत की नवीन शैली के रूप में कव्वाली का विकास हुआ।

प्रश्नः सूफी और मध्यकालीन रहस्यवादी सिद्ध पुरुष (संत) हिंदू-मुसलमान समाजों के धार्मिक विचारों और रीतियों को या उनकी बाह्य संरचना को पर्याप्त सीमा तक रूपान्तरित करने में विफल रहे। टिप्पणी कीजिए।

(UPSC-2014)

उत्तरः सूफी एवं संत भक्ति को मध्यकालीन सामाजिक-धार्मिक आंदोलन के रूप में देखा जाता रहा है क्योंकि ऐसा माना गया कि इन्होंने धार्मिक क्षेत्र में सुधार लाकर सामाजिक व्यवस्था में सुधार लाने का प्रयास किया था। किंतु अगर हम गहराई से परीक्षण करते हैं, तो हम पाते हैं कि उनके द्वारा धर्म और आध्यात्म के माध्यम से किया गया समाज सुधार का प्रयास व्यावहारिक सामाजिक धरातल पर सफल नहीं हो सका।

महत्वपूर्ण संत कबीर और नानक तथा सूफी संत जायसी ने कुछ महत्वपूर्ण धार्मिक और आध्यात्मिक मूल्यों को आधार बनाकर हिंदू और मुस्लिम समाज के अंतर्गत व्याप्त धार्मिक और सामाजिक आडम्बरों को दूर करने का प्रयास किया था। उन्होंने सभी प्रकार के कर्मकांड को अस्वीकार किया। कबीर ने यह स्थापित करने का प्रयास किया कि अल्लाह और ईश्वर एक है; तो हिंदू और मुसलमान पृथक कैसे हो गये? उसी प्रकार उनका यह भी कहना था कि आत्मा और ब्रह्म की एकता को प्राप्त करने के लिए मूर्तिपूजा और कर्मकांड की जरूरत क्या है। किंतु मध्ययुगीन समाज में परिवर्तन लाने के लिए एक क्रमबद्ध और सुस्पष्ट सामाजिक आंदोलन की जरूरत थी, महज धार्मिक और आध्यात्मिक एकता का प्रोत्साहन पर्याप्त नहीं था। इसलिए भक्ति और सूफी संत अपने उद्देश्य में सीमित रूप में ही सफल रहे।

प्रश्न– भारतीय कला में बाँसुरी-वादक कृष्ण अत्यन्त लोकप्रिय है। चर्चा कीजिए। (2012)

उत्तर– भारत की लोक कथा में 'राम' एवं 'कृष्ण' दोनों लोकप्रिय विषय रहे हैं, परन्तु राम की तुलना में कृष्ण अधिक

लोकप्रिय रहे हैं क्योंकि कृष्ण की भक्ति साख्य भाव की भक्ति है, जो रामभक्ति की तुलना में लोकरंजन कहीं अधिक करती है।

साहित्य- चैतन्य एवं मीरा के भजन, सूरदास और वल्लभाचार्य के लेखन से लेकर रहीम कवि की रचनाओं के केन्द्र में मुरली मनोहर कृष्ण रहे हैं।

स्थापत्य कला- उत्तर में मथुरा एवं वृंदावन, पूरब में बंगाल एवं असम, पश्चिम में गुजरात एवं राजस्थान तथा दक्षिण में भारत के कुछ भव्य मंदिरों की शोभा मुरली मनोहर कृष्ण की मूर्ति बढ़ाती रही है।

मूर्तिकला- शायद ही भारत के कोई सफल मूर्तिकार होंगे जिनके हाथों से मुरली मनोहर कृष्ण की मूर्ति नहीं तराशी गयी हो।

चित्रकला- राजपूत चित्रकला से लेकर मुगल चित्रकला तक तथा किशनगढ़ चित्रकला से लेकर मधुबनी चित्रकला तक सभी प्रमुख चित्रकला शैलियों के केन्द्र में राधा-कृष्ण रहे हैं।

नृत्य कला- कथक तथा सत्रिया नृत्य के मूल विषय राधा-कृष्ण के संबंध ही हैं, परन्तु इनका प्रभाव अन्य नृत्य शैलियों पर भी देखा जा सकता है।

संगीत कला- चाहे वह भारत में संगीत की हिन्दुस्तानी शैली हो या कर्नाटक शैली, उनमें विकसित अनेक राग राधा-कृष्ण के संबंधों के इर्द-गिर्द घूमते हैं।

प्रश्नः- भारतीय भक्ति परम्परा में मीराबाई के योगदान को निरुपित कीजिए।

1. मीराबाई ने भक्ति आंदोलन को एक वैकल्पिक स्वर दिया और वह स्वर था- महिला पहचान। भक्ति, मंदिर, साधु ये सभी पुरुष प्रधान समाज से जुड़े हुए थे। संन्यासियों के समूह में किसी संभ्रान्त घर की महिला का शामिल होना एक बड़ा ही क्रान्तिकारी कदम था। परन्तु सिसोदिया राज परिवार की पृष्ठभूमि से आने के बावजूद भी उसने स्वेच्छा से संन्यास जीवन को चुना और महिला भक्तों के समक्ष एक मिसाल खड़ी कर दी।
2. मीरा का आगमन एक पुरुष प्रधान समाज के विरुद्ध महिला विद्रोह का सूचक था, इसलिए इसे एक सामाजिक क्रान्ति के रूप में भी देखा जा सकता है। यही वजह है कि पुरुष प्रधान समाज के लिए मीरा की स्मृति सुखद नहीं है। आज भी राजस्थान में कोई अपनी पुत्री का नाम मीरा नहीं रखना चाहता।
3. कृष्ण भक्ति का सबसे कोमल पक्ष मीरा की भक्ति के रूप मे व्यक्त हुआ है। मीरा के भजन भारतीय संगीत की अनुपम धरोहर बन गये, इतना तक कि महात्मा गाँधी ने अपना अंतिम जन्म दिन, जो स्वतंत्र भारत में उनका पहला जन्म दिन था, मीरा के भजन सुनकर मनाया।
4. मीरा की रचनाएँ राजस्थानी साहित्य की अनुपम धरोहर हैं।

प्रश्नः- चैतन्य महाप्रभु के आगमन से भक्ति आंदोलन को एक असाधारण नयी दिशा मिली थी। चर्चा कीजिए।

1. चैतन्य महाप्रभु ने भक्ति में अत्यधिक भावनात्मक तत्व लाकर उसे सूफी पंथ के करीब ला दिया।
2. उन्होंने संकीर्तन प्रणाली चलायी। इस कारण भक्ति आंदोलन ने एक लोकप्रिय आंदोलन का रूप ले लिया तथा बंगाल में हिन्दू और मुसलमान दोनों संकीर्तन की ओर आकर्षित हुए।
3. चैतन्य भक्ति ने मुस्लिम बहुल क्षेत्र में अपना आधार निर्मित किया तथा न केवल इस्लाम धर्म में धर्मान्तरण को सीमित कर दिया, बल्कि चैतन्य के प्रभाव में अनेक मुसलमान हिन्दू धर्म में धर्मान्तरित हुए।
4. इनका प्रभाव इतना अधिक बढ़ गया कि इन्हें कृष्ण का अवतार माना जाने लगा। फिर इन्होंने अपने 6 गोस्वामी संतों को भेजकर वृंदावन में भक्ति का आधार बनाया।
5. इन्होंने बंगाल में इतनी ठोस बंगाली संस्कृति कायम कर दी कि भारत के विभाजन के पश्चात् भी पाकिस्तान, बांग्ला संस्कृति की विरासत से मुक्त नहीं हो सका और फिर उसे शीघ्र ही दूसरे विभाजन का सामना करना पड़ा।
6. चैतन्य की भक्ति ने कृष्ण भक्ति को इतना रूपान्तरित कर दिया कि कृष्ण भक्ति न केवल विभिन्न क्षेत्रों के भारतीयों के लिए, बल्कि विदेशियों के लिए भी आकर्षण का केन्द्र बन गयी तथा इसका ज्वलंत उदाहरण है इस्कॉन मंदिर।

अभ्यास प्रश्न- भक्ति साहित्य की प्रकृति का मूल्यांकन करते हुए भारतीय संस्कृति में इसके योगदान का निर्धारण कीजिए। **(150 शब्द, 2021)**

उत्तरः भक्ति आंदोलन सबसे बड़ा सांस्कृतिक आंदोलन रहा है जो लगभग 1400 वर्षों तक चलता रहा तथा इसने भारतीय समाज के विविध पक्षों पर अपना प्रभाव छोड़ा।

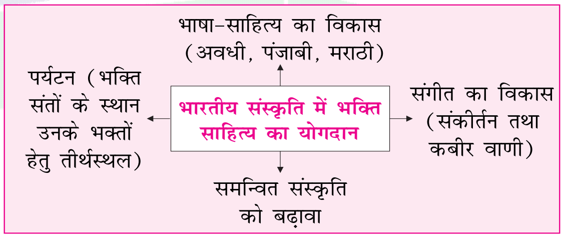

भक्ति साहित्य की प्रकृतिः भक्ति आंदोलन ने अपने पीछे साहित्य का एक विपुल भंडार छोड़ा है, इसमें विविध भाषाओं के साहित्य उपलब्ध हैं तथा इसमें उत्तर और दक्षिण के संत, निर्गुण और सगुण संत, पुरूष एवं महिला संत सभी की वाणी व्याप्त है। यह अपने स्वरूप में बहुलवादी है।

भारतीय संस्कृति में भक्ति साहित्य का योगदानः

1. भारतीय संस्कृति में धर्म की भाषा संस्कृत रही थी, परंतु भक्ति आंदोलन ने इसे लोकभाषा के रूप में स्थापित कर दिया।

2. उन्होंने क्षेत्रीय भाषा में अपने आध्यात्मिक अनुभव को जनसामान्य के घरों तक पहुँचाया। उदाहरणस्वरूप, अगर आज रामायण की कथा जीवित है, तो वाल्मीकि की वाणी में नहीं, तुलसी की वाणी में।
3. इसने भारत में क्षेत्रीय साहित्य के विकास को प्रोत्साहन दिया।
4. वर्तमान भारतीय संगीत परंपरा (कर्नाटक संगीत एवं हिन्दुस्तानी संगीत) में भी भक्ति साहित्य का योगदान रहा है। भक्ति साहित्य सामाजिक प्रतिरोध का भी स्वर बन गया। इसने धर्म एवं समाज में विद्यमान कुरीतियों को प्रतिबंधित किया।

KHAN GLOBAL STUDIES
Most Trusted Learning Platform
KHAN SIR